जैन-आगमों में योगदृष्टि

☐ डॉ० सुभाष कोठारी

आगमों के वैचारिक पक्ष को जब हम सामने रखते हैं तो उनमें प्रतिपादित विषयों का स्वतः ही बोध हो जाता है और हमारी दृष्टि आगम विषयक बन जाती है। आगमों में प्रायः सिद्धान्त, दर्शन, गणित, ज्योतिष आदि विषयों का समावेश हुआ है। यह मात्र धार्मिक या सैद्धान्तिक न होकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता का परिचायक भी है। इसी के अन्तर्गत मनुष्य को अपने शक्तिबल एवं बौद्धिकबल को विकसित करने के लिए जिन साधनों का वर्णन प्राप्त होता है वे साधन सर्वोपरि एवं महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। साधना-मार्ग के लिए ध्यान की आवश्यकता होती है। चित्त की एकाग्रता के लिए विविध प्रकार के आसन, प्राणायाम की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी ध्यान की। इससे शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक इन तीनों का विकास होता है, जिसे आगमों की दृष्टि से योग की संज्ञा दी गई है।

योग को आगमों में शान्ति के मार्ग की खोज के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। सर्वप्रथम जब हम आचारांग को देखते हैं तो यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इसमें जितने भी सूत्र हैं वे सभी किसी न किसी पक्ष को लिए हुए हैं, इसका पंचम सूत्र चार दृष्टियों को प्रतिपादित करता है।

आयावादी लोयावादी कम्मावादी किरियावादी।

अर्थात् आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी। ये चार विचारधाराएँ योग से सम्बन्धित हैं। जो व्यक्ति आत्मा को जानता है वह लोक की वास्तविकता को जानता है। मुझे क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए इसको भी वह अच्छी तरह से जानता है। इसको आचारांग में "परिण्णा" अर्थात् विवेक की संज्ञा दी है।

इस तरह की विचारधाराओं का क्रम प्रत्येक जैन आगम में है। जिसके आधार पर निम्न योगों को विद्वानों के सामने रखा जा सकता है—

१. अध्यात्मयोग।

२. समतायोग।

३. ध्यानयोग।

४. भावनायोग।

५. परिमार्जनयोग।

अध्यात्मयोग

आत्मसाधना के लिए शरीर और मन की शक्ति को जागृत करना होता है। जिसका विवेचन जैन आगमों में स्पष्ट है। क्योंकि जैन आगम में इन्द्रिय और मन की शक्ति के क्षीण

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने एवं चित्त के संकल्प एवं विकल्प के क्षय होने पर जो भाव जागृत होता है वह जागृत भाव आध्यात्मिक शक्ति का अपूर्व गुण माना जाता है। आचारांग के प्रथम शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के सातों उद्देशकों में एकेन्द्रिय आदि जीवों की जो रक्षा करने की बात कही गई है वह मनोवैज्ञानिक कही जा सकती है। लोकविजय अध्ययन कर्मों के कारणों की शान्ति का अर्थात् क्षय का कथन करने वाला है और इसी में अनेक चित्तता आदि का जो कथन किया गया है वह भी व्यक्ति को संकल्प, विकल्पों से मुक्त कराता है क्योंकि आध्यात्मिक योग का लक्ष्य है असीम शक्ति की प्राप्ति करना। सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में "जोगवाही" शब्द का प्रयोग किया है जिससे योग का कथन स्पष्ट होता है और इसी के आगे जो भी कथन किया गया है वह सब विविध आयामों को लिए हुए अध्यात्मयोग के भावों को स्पष्ट करता है।

अध्यात्मयोग में मुख्यतः ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की बात को ले सकते हैं और इसीके अन्तर्गत तप के चिन्तन को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। तप का जो वर्णन है वह सभी आगमों में विस्तार से देखा जा सकता है। औपपातिकसूत्र में तपोधिकार, उपासकदशांग का प्रथम अध्ययन योग की मर्यादा, आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का प्रथम उद्देशक, दशवैकालिक, भगवतीसूत्र, स्थानांग, आदि सभी आगमों में अध्यात्मयोग के विषय में विस्तार से विवेचन है।

समतायोग

आचारांग का सूत्र ही है "समियाए धम्मे" अर्थात् समता का नाम धर्म है।[1] "तुममेव तुमं मित्रं"[2] यह सूत्र समता के पाठ को स्पष्ट करता है। सूत्रकृतांग में समता-विषयक जो बात कही गई है वह आचारांग के उक्त सूत्र पर विवेक की दृष्टि प्रतिपादित करती है जिसमें यह लिखा है—

"सव्वं जगं तु समयाणुपेही पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा।"[3]

अर्थात् सभी जगत को समतापूर्वक देखो, प्रिय और अप्रिय समझना ठीक नहीं है। सूत्रकृतांग के द्वितीय अध्ययन में समतापूर्वक धर्म का उपदेश करने के लिए भी कहा है।[4]

दशवैकालिक में रागद्वेष से रहित भावों को सम अर्थात् समतापूर्ण बतलाया है।[5]

समता आत्मा का गुण है, इसके बिना मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तियों को नहीं रोका जा सकता है। समता ध्यान की क्रियाओं के लिए अतिआवश्यक कही जा सकती है क्योंकि यह राग, द्वेष और मोह के अभाव होने पर ही होती है। ज्ञानी पुरुष कर्मों के क्षय करने के लिए जब प्रवृत्त होता है, तब वह सर्वप्रथम साम्यभाव को ही धारण करता है

---

१. आचारांग १-१
२. आचारांग ३-३
३. सूत्रकृतांग १०-७
४. वही २-२
५. दशवैकालिक ९-११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और वह निरन्तर सोचता है कि जगत में जितने भी जीव हैं वे सभी अपना हित चाहते हैं इसलिए "सव्वेसिं जीवियं पियं" की भावना अपने हृदय में ग्रहण करके चार घातिया कर्मों को क्षय करने के लिए निरन्तर ही प्रयत्नशील होता है। इस प्रकार के प्रयत्न से वह मन, वचन और काया की शुद्धि को कर लेता है। जैनयोग के मर्मज्ञ आचार्य हरिभद्रसूरि ने समता को परिमार्जन का साधन कहा है और यह भी बतलाया है कि जो साधना के शिखर पर आरूढ होकर कर्म की ग्रन्थियों को काट देता है वह समत्वयोग का धनी हो जाता है।[1]

प्रश्नव्याकरणसूत्र में कारुण्य भाव का जो निर्देश है वह समतापरक ही है।[2]

ध्यानयोग

साधना मार्ग में साधक चित्त की एकाग्रता के लिए विविध प्रकार के साधनों का प्रयोग करता है परन्तु ज्ञान की एवं आत्मा की वास्तविकता के लिए ध्यानयोग मुक्ति का सोपान कहा जा सकता है। क्योंकि ध्यान कर्मों के क्षय करने के लिए किया जाता है। आगमग्रन्थों में इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर चार प्रकार के ध्यानों का वर्णन है—

१. आर्तध्यान २. रौद्रध्यान ३. धर्मध्यान ४. शुक्लध्यान।

सिद्धान्तग्रन्थों में इन्हीं का विवेचन किया गया है। इनमें से दो ध्यान संसार से सम्बन्धित माने गए हैं और दो—धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान मुक्ति के सोपान कहे गए हैं। ध्यान करने वाला मुक्तिसाधना के लिए प्रयत्नशील होता है, वह अपने किये हुए कर्मों को क्षय करने के लिए अनुचिन्तन, मनन आदि का जो मार्ग अपनाता है, वह साधना का मार्ग है।

आगमों में भगवतीसूत्र, स्थानांग, औपपातिक, आचारांग आदि के चिन्तन से यह निष्कर्ष निकलता है कि तत्त्वों का आलम्बन लेकर ध्यान करने वाला जो प्रयत्न करता है वह तप है, संयम है एवं चतुर्गति के कारणों को रोकने वाला है।

आचारांग में ध्यान के जो साधन बताये गये हैं वे महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें लिखा है कि

"राइ दिवंपि जयमाणे अपमत्ते समाहिए झाई।"

अर्थात् रात और दिन अप्रमत्त रूप से समाधिपूर्वक ध्यान करना चाहिए। समाधि के लिए धर्मध्यान और शुक्लधान आवश्यक माने गए हैं। नौवें अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में महावीर के आसनों का, ठहरने के स्थानों का, ध्यान के केन्द्रों का जो वर्णन है वह अधिक विचारणीय कहा जा सकता है।

"अयमुत्तमे से धम्मे"—यह उत्तम आचार है" ऐसा संकेत ध्यानस्थ का प्रमुख अंग माना गया है क्योंकि ध्यानी सर्दी आदि के प्रति विचार न करते हुए समियाए ठाइए[3]—समतापूर्वक ध्यान करते थे। यही नहीं अपितु इसी अध्ययन में यह स्पष्ट किया है कि समतापूर्वक ध्यान

---

१. योगदृष्टिसमुच्चय, पृ. १३

२. प्रश्नव्याकरणसूत्र—सव्व जवीरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।

३. आचारांग अध्ययन ९ उद्देशक २, गाथा १५

आसनस्थ त
आत्मस्थ म
तब हो स
आश्वस्त ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

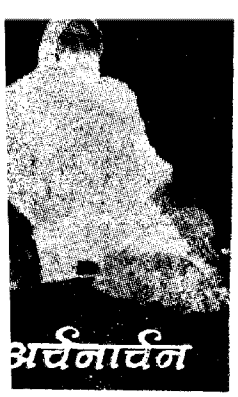

करने से व्यक्ति सभी प्रकार के कष्टों को सहन करने में समर्थ हो जाता है और ममत्व के प्रति किंचित् भी स्नेह नहीं रह जाता है। जिस प्रकार शूरवीर युद्ध में अग्रणी होकर सभी प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो जाता है, उसी प्रकार ध्यानी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जाता है।[1]

मन, वचन और काय इनकी वृत्तियों को रोकने के लिए शुक्लध्यान की आवश्यकता होती है। इसके लिए आचार्यों ने क्षमा, मार्दव, आर्जव और मुक्ति को प्रधान बतलाया है। इसी के साथ अन्य कई विचार प्रस्तुत किये हैं तथा यह बतलाया है कि अन्तःकरण की शुद्धि के लिए मुक्तिसाधना का मार्ग परम आवश्यक है।

भावनायोग

"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणई" यह आचारांग की एक सूक्ति है, जिसमें भावना का विचार स्पष्ट है। व्यक्ति के लिए साधनामार्ग में लगने के लिए जहाँ धार्मिक चिन्तन को आवश्यक माना गया है वहीं सांसारिक चिन्तन का होना भी ध्यान का एक साधन कहा जा सकता है, जब तक व्यक्ति संसार की असारता के विषय में अपनी भावना व्यक्त न करे तब तक उसे संसार का आभास हो ही नहीं सकता है। आचारांगसूत्र में तत्त्वदर्शी के लिए कहा गया है—

"भूएहि जाणे पडिलेह सायं"[2] अन्य प्राणियों के साथ अपने पर विचार करे।

भावना एक वैचारिक दृष्टिकोण है, जिसे अनुप्रेक्षा नाम दिया गया है। यह शब्द स्थानांग में विशेषरूप से आया है।[3] जिसका अर्थ अपने भावों को, सांसारिक धारणाओं को वास्तविकतापूर्वक चिन्तन, मनन करना एवं सत्य की वास्तविकता को पहचानना है। सर्वप्रथम आगमों में चार अनुप्रेक्षाएँ थीं—(१) एकत्व (२) अनित्य (३) अशरण और (४) संसार अनुप्रेक्षा।[4]

सिद्धान्तग्रन्थों में बारह भावनाएँ योग से सम्बन्धित कही गई हैं, जिनका अपना विशेष महत्त्व है। यदि मैं इन पर विचार करके अपना स्वतन्त्र चिन्तन रखूं तो यह बात कह सकूंगा कि ये बारह भावनाएँ वैराग्यपूर्ण हैं और इनका योगसाधना के लिये चिन्तन किया जाना आवश्यक है।

इससे साधक विकारों से निर्मल, शरीर से सहनशील और मन से दृढ संकल्पी बन सकेगा।

---

१. आचारांग अध्ययन ३ का समग्र अंश
२. आचारांग तृतीय अध्ययन, द्वितीय उद्देशक
३. स्थानांग ४।१।२४७
४. (अ) वही—"धम्मस्सणं झाणस्स चत्तारि अणुपेहाओ पण्णत्ताओ तहा एगाणुप्पेहा अणिच्चाणुप्पेहा संसाराणुप्पेहा।"
(ब) आचारांग २।२ (स) भगवतीसूत्र २।१ (द) सूत्रकृताङ्ग १७।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों में सबसे महत्त्वपूर्ण भावनाएँ निम्न कही गई हैं—१. मैत्री २. प्रमोद ३. कारुण्य और ४. माध्यस्थ्य ।

तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता के अतिरिक्त पातञ्जल योगसूत्र, अमितगति के भावना चिन्तन, हेमचन्द के योगशास्त्र आदि में इन्हीं का बाहुल्य है । आचार्य हरिभद्रसूरि ने इन्हीं पर विशेष जोर दिया है और उन्होंने अपने योगदृष्टिसमुच्चय में आठ योगसम्बन्धी भावनाएँ व्यक्त की हैं ।[1]

परिमार्जनयोग

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये मन, वचन और काया की शुद्धि के अतिरिक्त आगमों में ६ प्रकार के वैज्ञानिक साधनों को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है वह आज जहाँ एक ओर आत्मपरिमार्जन का साधन है वहीं दूसरी ओर शारीरिक आधि-व्याधियों को दूर करने के लिये निम्न साधनों का होना आवश्यक है—१. इच्छाओं का रोकना २. समर्पण की भावना ३. प्रतिक्रमण, ४. कायोत्सर्ग ५. भक्तिभावना एवं ६. प्रत्याख्यान ।

इन साधनों के अतिरिक्त २२ प्रकार के परिषहों पर विजय, आठ प्रकार के मदों का त्याग, बारह प्रकार के तपों में प्रवृत्ति, दस प्राणों अर्थात् प्राणशक्ति की क्षमता पर विचार, लेश्या, चिन्तन आदि आवश्यक माने गए हैं । प्राणशक्ति को तीव्र करने के लिये विविध प्रकार के आसनों पर बल दिया जाता है, इससे आभामण्डल स्वच्छ एवं निर्मल होता है । शारीरिक एवं मानसिक तनाव की मुक्ति के लिए इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । पेट की समस्त बीमारियों के लिए अचूक औषधि मानी गई है ।

इससे विचारशक्ति बढ़ती है, चिन्तन जागृत होता है और चित्त की चंचलता आदि भी दूर होती है । इसलिए ध्यान की जो विविध दृष्टियाँ आगमों, सिद्धान्तग्रन्थों में कही गई हैं वे साधक की सत्य-दृष्टि में आनी चाहिए, इससे जीवन को जीने की कला का वास्तविक आभास हो सकेगा ।

---

१. मित्रा तारा बला दीप्रा स्थिरा कान्ता प्रभा परा ।
नामानि योगदृष्टीनां लक्षणं च निबोधत ।। गाथा १३ ।।

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org